

श्रीमद्भागवतम् स्कन्ध 7 अध्याय 13: सन्त अवधूत

14 September 2026



पाठ से पहले एक निवेदन

श्रीमद्भागवत महापुराण के ये अध्यायवार सार गीता प्रेस भागवत को मुख्य आधार मानकर तैयार किए गए हैं। ये भागवत के अध्ययन में सहायक हैं, मूल ग्रंथ का स्थान नहीं ले सकते।

अध्ययन का मुख्य और अनुशंसित मार्ग गीता प्रेस की भागवत पुस्तक से सीधा पाठ है। यात्रा में, घर से दूर, या जब पुस्तक पास न हो, तब निरंतर अध्ययन, पुनरावृत्ति और समझ के लिए इन सारों का सहारा लिया जा सकता है।



सह्याद्रि की पहाड़ियों की ढलानों पर, भक्त-राजा प्रह्लाद को एक सन्त मिले जो नंगी भूमि पर लेटे थे, उनका शरीर धूल से ढका था, वे कुछ भी नहीं कर रहे थे — फिर भी एक ऐसी आन्तरिक शान्ति से दीप्त थे जिसे कोई धन नहीं खरीद सकता। उस सन्त ने जो कहा वह भागवत की सन्तोष पर सर्वाधिक सुन्दर शिक्षाओं में से एक है।

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय।

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय।

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय।

श्रीमद्भागवतम् विज्ञम में आपका स्वागत है — श्रीमद्भागवत महापुराण की पावन कथाओं और शिक्षाओं की एक भक्तिपूर्ण यात्रा। सप्तम स्कन्ध के इस त्रयोदश अध्याय में, नारद संन्यास-आश्रम पर अपनी शिक्षा को प्रह्लाद तथा एक सन्त तपस्वी की कथा से, सन्तोष के सच्चे अर्थ पर, पूर्ण करते हैं।

अध्याय-परिचय

- शास्त्र: श्रीमद्भागवत महापुराण
- स्कन्ध: 7 (सप्तम स्कन्ध)
- अध्याय: 13
- अध्याय-शीर्षक: संन्यासी का मार्ग तथा सन्त अवधूत
- मुख्य वक्ता: सिद्ध नारद, कथन करते हुए; कथा के भीतर, सन्त तपस्वी तथा प्रह्लाद
- मुख्य श्रोता: सम्राट युधिष्ठिर; कथा के भीतर, प्रह्लाद
- मुख्य स्थान: युधिष्ठिर की सभा; कथा के भीतर, सह्याद्रि की पहाड़ियों की ढलानें
- मुख्य विषय-वस्तु: संन्यासी का आचरण, तथा सन्त की सन्तोष, लोभ की व्यर्थता, एवं स्व में विश्राम पर शिक्षा
- मुख्य श्लोक-सीमा: स्कन्ध 7, अध्याय 13, श्लोक 1-46
- मूल संस्करण: गीता प्रेस श्रीमद्भागवत महापुराण

संन्यासी का मार्ग

नारद ने संन्यासी का वर्णन किया, उस पुरुष का जो संसार को पूर्णतः त्यागने योग्य है। जिसके पास अपने शरीर के अतिरिक्त कुछ भी शेष नहीं, समस्त कामना से मुक्त, वह पृथ्वी पर विचरण करता है, किसी भी ग्राम में एक रात्रि से अधिक नहीं ठहरता। वह केवल अपने आश्रम के चिह्न धारण करता है — दण्ड तथा कमण्डलु — भिक्षा पर जीता है, कहीं आश्रय नहीं लेता, प्रत्येक प्राणी का मित्र, शान्त, तथा पूर्णतः भगवान् नारायण के प्रति समर्पित:

एक एव चरेद्भिक्षुरात्मारामोऽनपाश्रयः ।

सर्वभूतसुहृच्छान्तो नारायणपरायणः ॥ ३ ॥

eka eva cared bhikṣur ātmārāmo 'napāśrayaḥ sarva-bhūta-suhṛc-chānto nārāyaṇa-parāyaṇaḥ

अर्थ: भिक्षु को पूर्णतः अकेला विचरण करना चाहिए, स्व में आनन्दित, किसी में आश्रय न लेते हुए, समस्त प्राणियों का हितैषी मित्र, शान्त, तथा पूर्णतः भगवान् नारायण के प्रति समर्पित। (SB 7.13.3)

ऐसे ऋषि को, नारद ने जोड़ा, न शिष्य एकत्र करने चाहिए, न पुस्तकें संचित करनी चाहिए, न सांसारिक उपक्रम करने चाहिए, न व्यर्थ वाद-विवाद में पड़ना चाहिए। यद्यपि गहन ज्ञानी हो, उसे स्वयं को अलक्षित रखना चाहिए — संसार को बालक, उन्मत्त, या मूक-सा प्रतीत होते हुए, अपनी महानता छिपाकर किन्तु अपना प्रयोजन स्पष्ट रखते हुए।

यह स्वतन्त्रता बाह्य रूप से कहीं अधिक गहरी है। नारद ने स्पष्ट किया कि जो आत्मा वस्तुतः इस शान्ति तक पहुँच चुकी है, उसे अपने संन्यास-चिह्न — दण्ड तथा कमण्डलु — भी धारण करने की आवश्यकता नहीं; वह क्षण की आवश्यकतानुसार उन्हें ग्रहण भी कर सकता है और त्याग भी (SB 7.13.9)। महत्त्वपूर्ण चिह्न नहीं, तत्त्व है: ऐसे परमहंस की पहचान भगवान् में उसके अखण्ड लीन होने में है, ठीक वैसे ही जैसे तीसरा श्लोक उसे पहले ही *नारायणपरायणः* — पूर्णतः भगवान् नारायण के प्रति समर्पित — घोषित कर चुका है। इसीलिए नारद जो कथा अब सुनाने वाले हैं उसे मात्र आलस्य की शिक्षा नहीं समझा जा सकता — सन्त की स्थिरता, जैसा शीघ्र ही स्पष्ट होगा, आलस्य नहीं अपितु भगवान् को पूर्णतः अर्पित हृदय का बाह्य आवरण मात्र है।



संन्यासी केवल अपने दण्ड तथा कमण्डलु के साथ पृथ्वी पर अकेला विचरण करता है, भिक्षा पर जीता है, समस्त प्राणियों का मित्र, तथा पूर्णतः भगवान् नारायण के प्रति समर्पित (SB 7.13.1-3)।

एक प्राचीन भेंट

इस जीवन को व्यवहार में दिखाने के लिए, नारद ने एक प्राचीन तथा पावन कथा स्मरण की — प्रह्लाद तथा एक सन्त तपस्वी के बीच संवाद, जो तब अजगर की भाँति जीवन जी रहे थे:

अत्राप्युदाहरन्तीममितिहासं पुरातनम् ।

प्रह्लादस्य च संवादं मुनेराजगरस्य च ॥ ११ ॥

atrāpy udāharantīmam itihāsaṁ purātanam prahrādasya ca saṁvādaṁ muner ājagarasya ca

अर्थ: इसी विषय पर ज्ञानी एक प्राचीन कथा सुनाते हैं — प्रह्लाद तथा उस ऋषि के बीच संवाद जो अजगर के मार्ग का अनुसरण करते थे। (SB 7.13.11)

लोगों के हृदयों का सत्य जानने के लिए संसारों में विचरण करते हुए, प्रह्लाद इस सन्त के पास पहुँचे जो सह्याद्रि की पहाड़ियों की ढलानों पर नंगी भूमि पर लेटे थे, उनका आध्यात्मिक तेज धूल से ढके शरीर के नीचे छिपा था। उनके आचरण, वेश, या वाणी से कुछ भी उनकी जीवन-स्थिति प्रकट नहीं करता था। प्रह्लाद ने श्रद्धा से उनका अभिवादन किया, उनके चरण छुए, और — समझने को उत्सुक — अपना प्रश्न रखा। सन्त का शरीर पुष्ट तथा स्वस्थ था, उस पुरुष के समान जो सुख भोगता है; फिर भी वे कुछ भी नहीं रखते थे और कुछ भी नहीं करते थे, स्थिर लेटे रहते जबकि समूचा संसार परिश्रम करता था। प्रह्लाद ने पूछा, वे ऐसी अवस्था को कैसे प्राप्त हुए?



प्रह्लाद श्रद्धापूर्वक भूमि पर लेटे धूल-ढके सन्त के चरण छूते हैं और पूछते हैं कि इतना स्वस्थ तथा ज्ञानी पुरुष ऐसी परम स्थिरता में कैसे जी सकता है (SB 7.13.12-18)।

सन्त का उत्तर — प्रयास की व्यर्थता

मुस्क्राते हुए, सन्त ने उत्तर दिया। उन्होंने स्वीकार किया कि प्रह्लाद, अपने हृदय में निवास करते भगवान् नारायण से सदा प्रकाशित, सत्य को पहले से जानते हैं; फिर भी वे उन सबके कल्याण के लिए उत्तर देंगे जो हृदय की शुद्धि चाहते हैं। असंख्य जन्मों में अतृप्त तृष्णा से प्रेरित होकर, उन्होंने अन्ततः, इस मानव-जीवन में, समस्त अशान्त प्रयास की व्यर्थता स्पष्ट देखी — कैसे पति-पत्नी तक, सुख के लिए तथा दुःख को दूर करने के लिए निरन्तर परिश्रम करते हुए, अपने ध्येय के विपरीत ही पाते हैं:

तत्रापि दम्पतीनां च सुखायान्यापनुत्तये ।

कर्माणि कुर्वतां दृष्ट्वा निवृत्तोऽस्मि विपर्ययम् ॥ २६ ॥

tatrāpi dam-patīnām ca sukhāyānyāpanuttaye karmāṇi kurvatām dṛṣṭvā nivṛtto 'smi viparyayam

अर्थ: यह देखकर कि पति-पत्नी तक, सुख पाने तथा दुःख दूर करने के लिए परिश्रम करते हुए, अपने ध्येय के ठीक विपरीत ही पाते हैं, मैं समस्त ऐसे कर्म से विरत हो गया हूँ। (SB 7.13.26)

सुख, सन्त ने समझाया, स्व का ही सार है और किसी बाह्य कारण की अपेक्षा नहीं रखता; इन्द्रिय-सुख तो मात्र कल्पना है, जिसे अपने ही स्वरूप को भूल चुके लोग सुख समझ बैठते हैं। उन्होंने इस विस्मृति का एक सरल चित्र दिया: जैसे कोई मृग, पास ही घास के नीचे छिपे जल-स्रोत से अनजान, जल की खोज में वन में दूर तक भटकता है, वैसे ही देह से ढकी आत्मा अपने भीतर के सुख को नहीं देख पाती और उसे बाहरी संसार में खोजती फिरती है:

जलं तदुद्भवैश्छन्नं हित्वाज्ञो जलकाम्यया ।
मृगतृष्णामुपाधावेत्तथान्यत्रार्थदृक् स्वतः ॥ २९ ॥

*jalam tad-udbhavaish channam hitvājño jala-kāmyayā mṛgaṭṛṣṇām upādhāvet tathānyatrārtha-
dṛk svataḥ*

अर्थ: जैसे मृग घास के नीचे छिपे जल को न देख पाकर उसे अन्यत्र खोजने दौड़ता है, वैसे ही देह से आवृत आत्मा अपने भीतर के आनन्द से अनजान रहकर बाहरी वस्तुओं में उसकी खोज करती रहती है। (SB 7.13.29)

धनी, शान्ति से दूर, लोभ तथा निद्राहीन भय से पीड़ित रहते हैं, राजा, चोरों, शत्रुओं, बन्धुओं, भिखारियों, और स्वयं तक से डरते हुए। अतः, उन्होंने कहा, विवेकी धन तथा दीर्घ जीवन की तृष्णा त्याग देते हैं, जो शोक तथा बन्धन का मूल है:

शोकमोहभयक्रोधरागक्लैब्यश्रमादयः ।
यन्मूलाः स्युर्नृणां जह्यात्स्पृहां प्राणार्थयोर्बुधः ॥ ३४ ॥

*śoka-moha-bhaya-krodha- rāga-klaibya-śramādayaḥ yan-mūlāḥ syur nṛṇāṁ jahyāt spṛhāṁ
prāṇārthayor budhaḥ*

अर्थ: शोक, मोह, भय, क्रोध, आसक्ति, दुर्बलता, तथा श्रम का मूल दीर्घ जीवन एवं धन की तृष्णा में है; अतः विवेकी को वह तृष्णा त्याग देनी चाहिए। (SB 7.13.34)

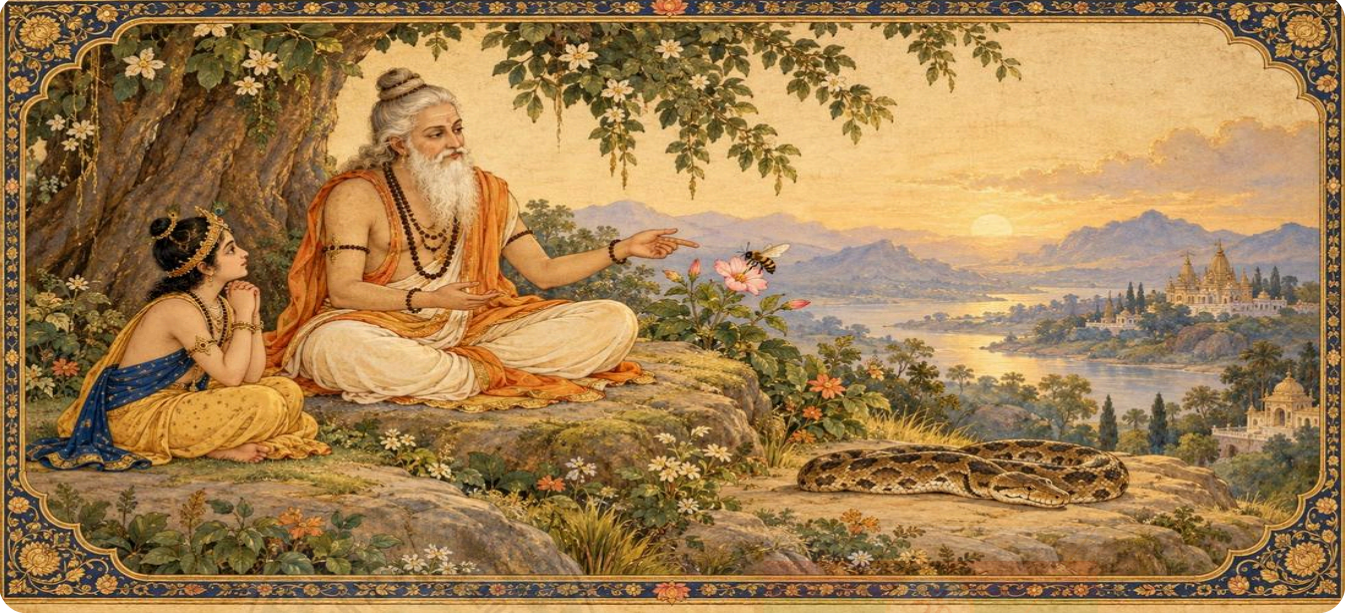
मधुमक्खी तथा अजगर से शिक्षा

सन्त ने तब अपने सच्चे गुरुओं के नाम लिए। मधुमक्खी से, जो प्रत्येक पुष्प से केवल थोड़ा-सा एकत्र करती फिरती है, उन्होंने वैराग्य सीखा — संसार से केवल आवश्यक ही लेना और कुछ भी संचित न करना। अजगर से, जो स्थिर पड़ा रहता है और केवल वही खाता है जो बिना माँगे उस तक आ जाए, उन्होंने सन्तोष सीखा — स्व में विश्राम पाना और भाग्य को जो लाए उसे आने देना। वे न किसी की निन्दा करेंगे न स्तुति, चाहे उसका स्वभाव कुछ भी हो; वे केवल सबके कल्याण की, और परम आत्मा में उनके एकत्व की कामना करते हैं:

नाहं निन्दे न च स्तौमि स्वभावविषमं जनम् ।
एतेषां श्रेय आशासे उतैकात्म्यं महात्मनि ॥ ४२ ॥

nāhaṁ ninde na ca staumi sva-bhāva-viṣamaṁ janam eteṣāṁ śreya āśāse utaikātmyaṁ mahātmani

अर्थ: मैं भिन्न स्वभाव वालों की न निन्दा करता हूँ न स्तुति; मैं केवल उनके कल्याण की, तथा परम आत्मा में उनके एकत्व की कामना करता हूँ।
(SB 7.13.42)



सन्त अपने सच्चे गुरुओं को प्रकट करते हैं — मधुमक्खी, जिससे उन्होंने वैराग्य सीखा, तथा अजगर, जिससे उन्होंने सन्तोष सीखा — केवल समस्त प्राणियों के कल्याण की कामना करते हुए (SB 7.13.34-42)।

प्रह्लाद सन्त का सम्मान करते हैं

इस प्रकार अपना गुप्त जीवन-मार्ग अर्पित करने के पश्चात् — सामान्य समाज तथा शास्त्र की चिन्ताओं से परे एक मार्ग — सन्त ने स्वीकार किया कि उन्होंने इसे केवल इसलिए साझा किया क्योंकि प्रह्लाद इतने पूर्णतः भगवान् के प्रति समर्पित थे:

स्वात्मवृत्तं मयेत्थं ते सुगुप्तमपि वर्णितम् ।

व्यपेतं लोकशास्त्राभ्यां भवान् हि भगवत्परः ॥ ४५ ॥

svātma-vṛttaṁ mayetthaṁ te suguṣṭam api varṇitam vyapetaṁ loka-śāstrābhyāṁ bhavān hi bhagavat-paraḥ

अर्थ: इस प्रकार मैंने तुम्हें अपना जीवन-मार्ग बताया, यद्यपि यह गुप्त तथा सामान्य लोक एवं शास्त्र से परे है — क्योंकि तुम पूर्णतः भगवान् के प्रति समर्पित हो। (SB 7.13.45)

परमहंस की, विरक्तों की सर्वोच्च श्रेणी की, यह शिक्षा सुनकर, प्रह्लाद ने सन्त का श्रद्धा से सम्मान किया, और, अत्यन्त प्रसन्न होकर, विदा लेकर अपने घर लौट गए।



पूर्ण संन्यासी के मार्ग पर सन्त की शिक्षा सुनकर, प्रह्लाद श्रद्धा से उनकी पूजा करते हैं और, अत्यन्त प्रसन्न होकर, विदा लेते हैं (SB 7.13.46)।

इस अध्याय की प्रमुख शिक्षाएँ

1. संन्यासी केवल भगवान् का है। समस्त आश्रय से मुक्त विचरण करते हुए, प्रत्येक प्राणी का मित्र, संन्यासी पूर्णतः भगवान् नारायण के प्रति समर्पित जीता है (SB 7.13.3)।
2. सच्ची महानता स्वयं को छिपाती है। विवेकी ऋषि अपनी श्रेष्ठता छिपाता है, बालक या मूक-सा प्रतीत होते हुए, केवल भगवान् के सम्मुख अपना प्रयोजन स्पष्ट रखता है (SB 7.13.10)।
3. अशान्त प्रयास स्वयं को पराजित करता है। जो सुख के लिए तथा दुःख के विरुद्ध निरन्तर परिश्रम करते हैं, वे विपरीत ही पाते हैं; सुख इन्द्रिय-विषयों में नहीं मिलता (SB 7.13.26)।
4. धन तथा दीर्घ जीवन की तृष्णा शोक का मूल है। शोक, भय, क्रोध, तथा श्रम सब उसी तृष्णा से उपजते हैं; विवेकी उसे त्याग देते हैं (SB 7.13.34)।
5. सन्तोष संसार को सही ढंग से देखकर सीखा जाता है। मधुमक्खी वैराग्य सिखाती है, अजगर सन्तोष; सन्त केवल सबके कल्याण की कामना करते हैं (SB 7.13.42)।
6. सच्चा सुख भीतर छिपा है, बाहर नहीं। जैसे मृग अपने ही पैरों तले छिपे जल-स्रोत को नहीं देख पाता, वैसे ही स्व को भूली आत्मा बाहरी संसार में आनन्द खोजती फिरती है (SB 7.13.29)।

एक भक्तिपूर्ण चिन्तन

इस अध्याय के हृदय में एक कोमल विडम्बना है। प्रह्लाद — स्वयं एक महान राजा तथा भक्ति के परम आदर्श — एक ऐसे पुरुष के चरणों में झुकते हैं जो कुछ भी नहीं रखता और कुछ भी नहीं करता, और उसमें एक गुरु पाते हैं। सन्त ने वह खोज लिया है जो हमारा समस्त प्रयास प्रायः छिपा देता है: कि सुख संसार से छीनने की वस्तु नहीं अपितु स्व में पहले से विश्राम करती शान्ति है, प्रकट होने की प्रतीक्षा में। उनकी स्थिरता

आलस्य नहीं अपितु स्वतन्त्रता है — उस पुरुष की स्वतन्त्रता जिसने मृगतृष्णा के पीछे दौड़ना बन्द कर अपने चरणों के जल की ओर मुड़ लिया। और उनके अन्तिम वचन की कोमलता पर ध्यान दें: वे न किसी की निन्दा करते हैं न स्तुति, अपितु प्रत्येक आत्मा के, हर स्वभाव के, सच्चे कल्याण तथा भगवान् में उसके एकत्व की कामना करते हैं। यही सच्चे वैराग्य का फल है — शीतलता नहीं, अपितु एक विस्तृत तथा शान्त प्रेम। हमें आरम्भ करने के लिए नंगी भूमि पर लेटने की आवश्यकता नहीं। हम एक पकड़ ढीली कर, एक शिकायत मौन कर, और अशान्त हृदय को, एक क्षण के लिए भी, उस भगवान् में विश्राम देकर आरम्भ कर सकते हैं जो पहले से ही उसका आनन्द है।

एक दैनिक भक्ति-अभ्यास

आज, मधुमक्खी तथा अजगर से सीखें। मधुमक्खी की भाँति, अपने दिन से केवल वही लें जिसकी आपको सचमुच आवश्यकता है, और एक ऐसी वस्तु त्याग दें जिसे संचित या पकड़ने का प्रलोभन था। अजगर की भाँति, जब कुछ ऐसा आप तक आए जिसे आपने नहीं खोजा — कोई असुविधा, विलम्ब, या छोटी हानि — तो उसे भाग्य के उपहार के रूप में शान्ति से स्वीकार करें, बिना संघर्ष या शिकायत के। उस स्थिरता के क्षण में, भीतर मुड़ें और शान्ति से दोहराएँ: “ॐ नमो भगवते वासुदेवाय।” सन्तोष, न कि तृष्णा, वह भूमि हो जिस पर आप विश्राम करें।

उपसंहार

इस अध्याय की एक ही शिक्षा उसकी कथा से भी अधिक चिरस्थायी है: सच्चा वैराग्य कभी मात्र निष्क्रियता नहीं था, और सन्तोष प्रयास से निर्मित होने वाली वस्तु नहीं — दोनों केवल वही शेष रहते हैं जब हृदय पूर्णतः नारायण की ओर मुड़ जाता है। सन्त की स्थिरता कभी आलस्य नहीं थी; वह ऐसा प्रेम था जिसे और कुछ नहीं चाहिए था। हम भी उस जल के पीछे दौड़ना छोड़ें जो हम पहले से ही अपने भीतर लिए हैं, उन छोटी तृष्णाओं को ढीला करें जो हमें अशान्त रखती हैं, और उपलब्धि नहीं, केवल भक्ति को ही अपनी शान्ति की भूमि बनने दें।

श्रीमद्भागवतम् का दिव्य ज्ञान हमारे हृदयों में शुद्ध भक्ति जगाए।

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय।

जय श्री माधव।

सन्दर्भ तथा आभार

- मूल संस्करण: गीता प्रेस, श्रीमद्भागवत महापुराण (अंग्रेज़ी, पूर्ण), सप्तम स्कन्ध, त्रयोदश प्रवचन, पृष्ठ 714–718।
- शृंखला: Srimad Bhagavatam Wisdom · Biswa Sanatan Dharma Seva Trust।
- पण्डित डॉ. श्री काशीनाथ मिश्र के आध्यात्मिक मार्गदर्शन तथा अनुशंसा के अनुसार प्रस्तुत।

यह लेखक के अपने शब्दों में एक मौलिक, निष्ठावान पुनर्कथन है, जिसमें संक्षिप्त उद्धृत श्लोक देवनागरी तथा लिप्यन्तरण में दिए गए हैं और उनके अर्थ सारांश के रूप में दिए गए हैं। यह किसी एक प्रकाशक के निरन्तर अनुवाद या भाष्य का पुनरुत्पादन नहीं है। किसी भी प्रकाशक द्वारा संबद्धता या समर्थन का कोई अभिप्राय नहीं है।

॥ हरि ॐ तत्सत् ॥

जय श्री माधव

ऑनलाइन पढ़ें: kalkiabatara.org/hi/blog-srimad-bhagavatam-canto-7-chapter-13-renunciant-path-and-the-saintly-avadhuta-hi.html

श्रीमद्भागवतम् विज्ञम • कल्कि अवतार इंटरनेशनल • बिस्व सनातन धर्म सेवा ट्रस्ट

